29.4.2

हिन्दी स्नातक प्रतिष्ठा भाग 1 के छात्रों के लिए।

विषय - नाटक

पाठ - नाटक के मुख्य तत्व

जैसा कि पूर्व के वर्ग में बताया गया था भारतीय आचार्यों ने नाटक के मूलतः तीन ही तत्व माने हैं— वस्तु, नेता और रस।

वस्तु से अभिप्राय नाटक की कथा अथवा कथानक से है। कथानक को तीन भागों में बाँटा गया है — 1. प्रख्यात अर्थात् इतिहास एवं पुराण आधारित।
2. उत्पाद्य अर्थात् कल्पना आधारित
3. मिश्र — अर्थात् इतिहास-पुराण और कल्पनाश्रित

आधुनिक काल इतिहास और कल्पनामिश्रित कथानकों को ही प्रमुखता मिली है। इन कथानकों के दो प्रकार होते हैं— आधिकारिक और प्रासंगिक कथानक।

आधिकारिक कथानक नाटक के प्रधान पात्र से या कहें नायक से जुड़ा होता है जो नाटक के प्रारंभ से लेकर अंत तक (फल अर्थात् फल प्राप्ति तक) नाटक में उपस्थित रहता है। प्रासंगिक कथानक नाटक के आधिकारिक मूल कथानक को बल प्रदान करने के उद्देश्य से सामान्य या गौण पात्रों से बना जाता है। इससे नाटक में गति आती है तथा एकरसता भी भंग होती है। वास्तव में कथानक के भीतर ही कथावस्तु निहित होती है जिसका प्रकाशन नाटककार का उद्देश्य होता है। चूंकि नाटक की कथावस्तु रंगमंच पर प्रस्तुत की जाती है। अभिनेता अपने अभिनय कौशल से कथोपकथन या संवाद द्वारा उसे व्यक्त करते हैं, ऐसे में महत्वपूर्ण नाटक का कथानक ही होता है जिसे सामान्य दर्शक ग्रहण करता है

यहाँ ध्यातव्य यह हो जाता है कि सामान्य प्रेक्षकों के बीच पढ़े-लिखे और अनपढ़ दोनों तरह दर्शक होते हैं। एक बात और कथानक की कथावस्तु का निहितार्थ समझने के लिए न तो काफी समय होता है न ही कोई समझानेवाले शिक्षक जैसे लोग होते हैं। सबकुछ क्षणिक वर्तमान में ही घटित होता है। कहने का तात्पर्य यह कि नाटक में घटती हुई घटनाओं का चित्रण होता है इसलिए कथानक की सरलता और बोधगम्यता दोनों अपेक्षित होता है।

प्राचीन भारतीय आचार्यों ने तो सम्यक् रूप से कथानक को ग्रहण करने के लिए इसे पाँच अवस्थाओं में बाँटा है — ये हैं - प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम। इन्हें संक्षेप में भी समझ लेना आवश्यक है — (यह निर्देशन के लिए अत्यंत आवश्यक है।)

1. प्रारम्भ :- इसमें कथानक का आरम्भिक भाग आता है जिससे नायक की इच्छा या उसके प्रमुख उद्देश्य का पता चलता है।
2. प्रयत्न :- इसमें नायक के उद्देश्य की पूर्ति के लिए किये गये प्रयत्नों का चित्रण होता है।
3. प्राप्त्याशा — इसमें नायक द्वारा अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु घटनाओं की चरमावस्था का चित्रण होता है। उद्देश्य पूर्ति की बाधाएँ यहाँ दूर होनी चाहिए।
4. नियताप्ति — इसमें नायक की फल-प्राप्ति की आशाएँ लगभग निश्चित हो जाती है।
5. फलागम — इसमें नायक को फल की प्राप्ति हो जाती है। यहीं नाटक का अंत हो जाता है।

पाश्चात्य नाट्य समीक्षकों ने भी कथानक की इसी तरह की पाँच अवस्थाएँ थोड़े शब्द-भेद से स्वीकार की हैं — ये हैं - प्रारम्भ, विकास, चरमसीमा, उतार और अंत या समाप्ति।

इसी तरह उपर्युक्त कथानक विकास की अवस्थाओं के कार्य व्यापार की दृष्टि से पाँच अर्थ-प्रकृतियाँ और पाँच सन्धियाँ बतायी गई हैं— अर्थप्रकृति - क्रमशः बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य हैं। तथा संधियाँ - - मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, निर्वहण हैं। नाटक में इनका विन्यास अपेक्षित माना जाता है। क्योंकि वास्तव में ये वस्तु योजना के अंग हैं, और कथा विकास में सहायक होती हैं।

2. नेता या पात्र :— नेता के अन्तर्गत ही पात्र भी आते हैं। और नाटक का प्रधान पात्र ही नेता कहलाता है। चूंकि नाटक की वस्तु यानी कथानक को आगे ले चलने का कार्य नेता ही करता है इसीलिए यह नाटक का महत्वपूर्ण तत्व होता है। नाटक के पात्रों में नायक, नायिका एवं अन्य सहयोगी पात्र जिसमें खलनायक विदूषक भी होते हैं। कई बार तो यह भी पता चल नहीं पाता है कि नाटक का नायक ही कौन है? उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत नाटक 'चंद्रगुप्त' नाटककार जयशंकर प्रसाद में ही देखें तो प्रायः यह प्रश्न खड़ा होता है कि नाटक का नायक कौन है? — चन्द्रगुप्त, चाणक्य या सिंहरण? इसीलिए भारतीय आचार्यों ने नायक के कुछ गुण निश्चित कर दिये हैं — धीरोदात्त, धीर ललित धीर प्रशान्त और धीरोद्धत। यही वर्गीकरण धैर्य की अनिवार्यता मानते हुए नायक में औदार्य (उदारता) लालित्य, प्रशान्ति (व्यापकता) उद्धतता जैसे गुणों का होना आवश्यक माना जाता है। शेष तत्वों पर विचार अगले वर्ग में होगा।

मेघा

हिन्दी विभाग, एस.एस.कॉलेज,
जहानाबाद।